



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2018; 4(1): 117-121
 www.allresearchjournal.com
 Received: 15-11-2017
 Accepted: 25-12-2017

डा. संजीव कौशल

असिस्टेंट प्रोफेसर
 इंदिरा गांधी शारीरिक खेल
 शिक्षा एवं खेल विज्ञान संस्थान,
 दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

आम जीवन का इतिहास रचता कवि - इब्बार रब्बी

डा. संजीव कौशल

प्रस्तावना:

द्वंद के बिना कोई जीवन नहीं होता। मथना हर वक्त चलता रहता है। इसी से रास्ता निकलता है। जरूरी नहीं वह रास्ता मुकम्मल हो, आखिरी हो। रास्ते से रास्ते निकलते रहते हैं, जीवन बढ़ता रहता है। जब तक यह प्रक्रिया चलती है जीवन की चमक उसका नयापन बना रहता है। इब्बार रब्बी के यहां यह प्रक्रिया लगातार देखी जा सकती है। कभी महाभारत और प्रेमचंद पढ़ने का नशा चढ़ा, कभी गीतों और छंदों में डूबे। यह छूटा तो राजकमल चौधरी ने पकड़ लिया। "अध्यात्मवादी और नैतिकवादी किशोर की परिणति अनैतिक समाज विरोधी भोगवादी युवक के रूप में हुई। यह एक अतिवाद से छुटकारा था तो दूसरे अतिवाद में दूब जाना था। मध्य मार्ग कहीं नहीं था। पहले घनघोर धर्म भावना थी, अब घनघोर नास्तिकता, भौतिकता। पहले चरण की प्रतिक्रिया में यह दूसरी तरह के भ्रमों में रहना था। इस पड़ाव में समाज, राजनीति, मजदूर, किसान, गांव आदि कुछ नहीं था। जीवन की खंडित दृष्टि थी। यह दूसरा भाववाद नया माया दर्पण था।" जब इन से मोह छूटा तो मार्क्सवाद, ब्रेख्त, नेरुदा, लोर्का, टॉलस्टॉय, दोस्तोवस्की, चेखव आदि ने घेर लिया। यहीं से एक मुकम्मल दृष्टि के बनने की शुरूआत हुई। हालांकि कविता अभी भी दूर थी। 1975 के आपातकाल ने इंसानी सोच पर लगे बंधनों को तोड़ डाला। और कविताएं जैसे बाढ़ में बहते पानी की तरह चारों तरफ से फूट पड़ीं।

इब्बार रब्बी अपनी कमियां नहीं छुपाते। वे चाहे व्यक्तिगत हों या वैचारिक। शायद यही वजह है कि जब उनकी नज़र समाज पर पड़ती है तो वे उसकी कमियां आसानी से ढूँढ लेते हैं और विडंबनाओं की शकल में ये कमियां कविताओं में चली आती हैं। उनके यहां बड़प्पन का कोई स्वांग नहीं है चीजें जैसी हैं कविताओं में भी वैसी ही हैं और यह शायद इसलिए हो पाता है कि कविताओं के पीछे एक खास मकसद है, यह मकसद समाज में हो रहे बदलावों और उनकी आड़ में हो रही बदमाशियां को बेनकाब करना है ताकि सही बदलाव सामने लाया जा सके या उसकी तरफ कदम बढ़ाया जा सके।

आम जीवन ज्यादातर रीता होता है उसमें चमक नहीं होती, वहां अगर कोई चमकता है तो वह है दर्द। इब्बार रब्बी की कविताएं बिना कोई भूमिका बनाए जीवन की हलचल में कुंद पड़ती हैं। उनकी कविताओं में दर्द की नसें सिली रहती हैं जिनमें चमक मारती रहती है। कविता 'बहन' में एक मध्यवर्गीय परिवार की मजबूरियों और झूठी नैतिकता को कवि ने कुछ इस तरह उकेरा है कि देखते ही बनता है। कविता में ऐसा कुछ नहीं जिसे अद्भुत कहा जा सके। कोई लाइन उठाकर लहराई जा सके। पूरी कविता आम जीवन की तरह एकदम आम है फिर भी जब आप इस कविता को पढ़ते हैं तो कविता आपको घेर लेती है और यह अहसास कविता को पढ़ने के महीनों बाद भी बना रहता है। जो दर्द बड़ी बहन के सीने में है वह आपके सीने में होने लगता है। पाठक यह नहीं कह सकता कि यह परेशानी उसकी परेशानी नहीं है। यह इब्बार रब्बी की कला है जो जीवन को इतने नजदीक खींच लाती है कि कागज़ पर कविता नहीं जीवन उतर आता है।

Corresponding Author:

डा. संजीव कौशल

असिस्टेंट प्रोफेसर
 इंदिरा गांधी शारीरिक खेल
 शिक्षा एवं खेल विज्ञान संस्थान,
 दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

आमतौर पर कविता में आम जीवन को तरजीह दी जाती है। ज्यादातर कविताएं आम लोगों के बारे में ही होती हैं। इसके बावजूद आम जीवन का आम पन उनमें कई बार गायब होता है। मगर इब्बार रब्बी के यहां ऐसा नहीं है। वह अपनी कविताओं में जिस संसार को बुनते हैं उसे हिस्सों में नहीं लाते, उसकी समग्रता में लाकर खड़ा कर देते हैं। वही रहन सहन वही बोली कपड़े व्यवहार लड़ाइयां झगड़े छोटा-मोटा प्यार। सब कुछ आम। एकदम आम। ऐसा लगता है जैसे पाठक कविता नहीं पढ़ रहा वह किसी के घर मिलने गया है और घर की एक एक चीज, उसकी सारी समस्याओं से खुद रूबरू हो रहा है। जिस घुटन में लोग रहते हैं उसे पाठक महसूस कर सकता है और ऐसा करते हुए कवि किसी बड़प्पन में नहीं होता बल्कि वह उसी जीवन का हिस्सा होता है। ऐसा लगता है कवि कविताओं की मुश्किलों को खुद जी रहा है, अपने पात्रों के साथ खुद भी अंधेरे में भटक रहा है। रास्ता किधर है नहीं मालूम, जो है उसी से टकराकर रास्ता बनाने की कोशिश कर रहा है।

इब्बार रब्बी की कविताओं से गुजरना दिल्ली से गुजरना है, दिल्ली की दुखती नसों, उसके दर्दों से गुजरना है। वह ऐसे कवि हैं जो कविताओं में इतिहास लिखते हैं, जीता जागता बोलता बतियाता हुआ इतिहास जिसे पढ़कर आम जीवन को बहुत गहराई से समझा जा सकता है।

आमतौर पर ज्यादातर कवि गांवों, छोटे कस्बों से आकर बड़े शहरों में बसते हैं मगर वे अपनी जड़ों को नहीं भूल पाते, लगातार उन्हें याद करते रहते हैं। वहां वापस जाना चाहते हैं। कई बार वे शहर में होकर भी शहर के नहीं होते, शहर को कोसते रहते हैं। इब्बार रब्बी शहर में हैं और शहर के हैं। कहीं जाना नहीं चाहते। जिस जगह ने रोजी-रोटी दी, घर दिया, पहचान दी, दोस्त दिए उसे छोड़कर वह जाना नहीं चाहते। उन्हें उससे लगाव है। इसका मतलब यह नहीं कि शहर उनके लिए आलोचना या सवालों से परे है। नहीं। मगर उसकी अपनी एक जगह है जिसे वह हमेशा याद रखते हैं। कविता 'मेरी दिल्ली' में वे कहते हैं:

किसी भी शर्त पर नहीं छोड़ना है,
अपनी व्यक्तिगत दिल्ली को,
जहां हर शाम सफरित होना है
इस बस से उस बस में मुझे।
मेरा सारा अपना दिन दे दो मुझे।
जनवरी की शामें और फरवरी की दोपहर,
और 'दि.प.' की बसें बस।
कुछ नहीं चाहिए मुझे और
जीने के लिए और मरने के लिए।²

यह शहर जो कवि ने चुना है वह खान मार्केट या डिफेंस कॉलोनी नहीं है, यह शहर का वह हिस्सा है जो मेहनतकश के पसीने से बना है जहां आमजन आता जाता है जहां पगथलियों से फूटती है सैंदुर महक आती है। वह दिल्ली में घुल जाना चाहते हैं। दिल्ली से उनका लगाव किसी प्रेमी प्रेमिका जैसा है जहां एक दूसरे के बिना रहना संभव नहीं। अपनी कविता 'इच्छा' में वे कहते हैं:

अगर कभी मरूं तो
बस के बहुवचन के बीच
बस के यौवन और सौंदर्य के बीच
कुचलकर मरूं मैं
अगर मैं मरूं कभी तो वहीं
जहां जिया गुमनाम लाश की तरह
गिरूं मैं भीड़ में
साधारण कर देना मुझे यह जीवन!³

दिल्ली दूसरे बड़े शहरों की तरह सिर्फ शहर नहीं है गांवों का एक कुनबा भी है। ये गांव शहर के शरीर में यहां वहां गुंथे हुए हैं या यूं कहें शहर इन्हीं गांव के बीच रिक्त स्थानों में बसा है। इन गांव में पुरानी आबादी के अलावा तमाम माइग्रेंट मजदूर भी रहते हैं जो शहर में तरह तरह के काम करते हैं। दिल्ली में हर सुबह बहुत बड़ी आबादी इधर से उधर सफर करती है। आज भी पब्लिक ट्रांसपोर्ट और खासकर बसें ही उनका सहारा हैं। दिल्ली की कामगार आबादी इन्हीं बसों में मिलती है और दिल्ली का एक बड़ा हिस्सा उनसे बनता है। कवि भी इन्हीं बसों में घूमता है। 'दिल्ली की बसों में' कविता में कवि कहता है "सौर से निकलते ही/ पायदान पर खड़ा हो गया; दिल्ली की बसों में/ मैं बूढ़ा हो गया।"⁴

बस में यह सफर रोजमर्रा की यात्रा नहीं है, जीवन यात्रा है। और इस जीवन के बारे में जब कवि सोचता है तो वह गुस्से से भर जाता है, कि राजनीति किस तरह मुल्क हो खचड़े की तरह दौड़ा रही है। लोगों का जीवन समझ में आने से पहले ही खत्म हो जाता है। लोग सीट पाने की फिराक में हैं, हर किसी की नज़र भरी हुई सीटों के खाली होने पर है। अभावों से भरी जिंदगी ने मनुष्य की मनुष्यता छीन ली है, लोग स्वार्थी हो गए हैं अपने में खो गए हैं फिर भी जीवन की संभावना बनी रहती है।

बस में जीवन है
चिंताएं हैं, वेतन है, कॉलेज है,
बच्चे हैं, भविष्य है।
बस में प्रेमी है, पति है,
आदरणीय है
अनुकरणीय है।⁵

बसों और सफर से भरे जीवन में हमारी नज़र कभी उन लोगों पर नहीं पड़ती जो इन बसों को चलाते हैं जिनसे यह सफर संभव होता है। उन्हें हर कोई नज़रअंदाज कर देता है। वे भी उसी तरह घिस रहे हैं जिस तरह बसों में चलने वाले लोग। सारा दिन चलते हैं पर कहीं नहीं पहुंचते। जीवन भर दौड़ कर भी वहीं के वहीं हैं। उनके जीवन की सुध लेने वाला कोई नहीं, कोई नहीं जो उन्हें उनकी मंजिल तक पहुंचाए। बस के कंडक्टर का घर किसी गंदी बस्ती के सुनसान में है। जहां उसका प्रेम, पत्नी, बच्चा, रोटी, अतीत सब सुनसान हैं। खाली बस में कंडक्टर चुपचाप बैठा है

जैसे कविता की किताब में
निरीह विराम चिन्ह

पहिए के नीचे आए पिल्ले-सा
पड़ा है वह इस दुनिया के गड्ढे में
टिकट फाड़ता है जैसे
सीना फाड़ रहा हो
मुर्दनी है पूरी बस में
कोहरे-भरे शीत में
ठिठुरता भी नहीं वह
जाड़े की रात
अकेला बैठा है।⁶

कवि पूछता है कि ऐसा क्या किया जाए कि वह हंसे, उसके जीवन की मुर्दनी हटे, उसके बच्चे स्कूल जाएं, पत्नी खीर पकाए, वह घर जाकर झगड़ा न करे, कि छुट्टी के दिन वह भी पिक्चर जा सके?

दिल्ली से उनका प्रेम कई बार आध्यात्मिक रंगत ले लेता है। दिल्ली को छोड़ने का विचार जैसे अपने घर को छोड़ना है। उनके लिए दिल्ली "खुसरो का पीहर" है। वे अलीगढ़ के रहने वाले हैं मैं जानता हूं। फिर भी पीहर वह है जहां मां है मां जहां मां-सा प्यार है। संघर्ष में जुटे व्यक्ति का कोई पीहर नहीं होता, कोई उसे मां की तरह नहीं दुलारता। हां जब संघर्ष खत्म होता है कोई नौकरी कोई ठिया मिल जाता है लोग पहचानने लगते हैं, शायद प्यार भी मिल जाता है। तब वह जगह पीहर सी हो जाती है इसीलिए कवि को दिल्ली छोड़ने के खयाल से रुलाई आने लगती है।

इब्बार रब्बी की दुनिया भीड़ की दुनिया है, लोग ही लोग, तरह-तरह के हर उम्र हर वर्ग के लोग। एक सच्चा लोकतंत्र। राज्य में नहीं न सही कविता में पूरा लोकतंत्र है। खुद को भीड़ का हिस्सा समझना लोकतंत्र की आत्मा के करीब जाना है। भीड़ हमारी सामूहिकता है। सब की ताकत। जिसे मार्क्सवाद गहराई से समझाता है। भीड़ के दर्शन से मनुष्य का व्यक्तिवाद झड़ जाता है, उसकी सबसे बड़ी बीमारी का इलाज हो जाता है। आधुनिक दुनिया की ज्यादातर समस्याएं खुद को विशेष मानने से शुरू होती हैं जो पूंजीवादी दर्शन का मुख्य आधार है। इब्बार रब्बी व्यक्तिवादी व्यवहार को लेकर बहुत सजग हैं। उनके लिए भीड़ में रहना खुद के करीब होना है। यह जीवन दर्शन की पराकाष्ठा है जहां व्यक्ति का अहं समाज में घुल जाता है। वे आत्मा के परमात्मा में मिलने के लिए नहीं तड़पते, लोगों की सामूहिकता ही उनके लिए परमात्मा है और इस तरह वे धर्म के व्यक्तिवादी मुक्ति के प्रयासों पर गहरी चोट करते हैं। अपनी कविता 'भीड़' में वे कहते हैं:

भीड़ में कितना खुश रहता हूं मैं
अपने में रहता हूं मैं
न किसी से कम
न किसी से ज्यादा
न किसी से आगे
न पीछे
सब के संग रहता हूं मैं
भीड़ में कितना खुश रहता हूं मैं
न गौरा न काला

न कोई उजला
न कोई मैला
सब एक-सा
एक-सा रहता हूं मैं।⁷

इब्बार रब्बी की कविताएं कई बार दुख को इतने गहरे जाकर पकड़ती हैं कि बदन तिलमिला उठता है, रूह कांप जाती है। भारतीय गांवों में जो गरीबी और बेरोजगारी है उसका सबसे वीभत्स रूप है बच्चों का कच्ची उम्र में शहरों में भेजा जाना। इनमें लड़के भी हैं और लड़कियां भी। कविता 'आठ साल का वह' में एक ऐसे पहाड़ी बच्चे की कहानी है जो आठ साल की उम्र में घर चलाने के लिए दिल्ली लाया गया है। कविता किसी फांस की तरह हमारी स्मृति में अटक जाती है जहां से उसे बिना किसी नुकली चीज के निकालना संभव नहीं होगा और शायद वह तभी न निकले, निकले तो बहुत खून बहा कर निकले। कुछ तो इस कविता का शिल्प बहुत सरल और साफ है शायद इसीलिए कहानी और उसका दर्द सीधे दिल तक पहुंचता है।

आठ साल का है अभी बस
साफ बोल नहीं पाता
जाएगा दिल्ली
पता नहीं कहां रहेगा
वहां क्या करेगा
क्या खाएगा
बस मनीआर्डर करेगा जाते ही
घर चल आएगा वहां से
चलाएगा पूरा पहाड़
दुनिया उठाएगा
पीठ पर
आठ साल का पान सिंह।⁸

यहां कवि सिर्फ कवि नहीं है जो दूर से दुनिया के हालचाल ले रहा है वह एक मां है जिसका कलेजा अपने छोटे मासूम बच्चे के लिए फटा जा रहा है उसे उसकी चिंता सता रही है कि वहां जाकर उसका क्या होगा वह कैसे रहेगा कैसे जिएगा। यह त्रासदी और गहरी तब होती है जब हम यह जानते हैं कि उसकी अपनी मां है फिर भी वह बच्चा वह मासूम बच्चा अकेला बहुत दूर, बड़े शहर में मजदूरी के लिए लाया जा रहा है। इससे क्रूर और क्या होगा कि हम छोटे-छोटे बच्चों को उनके सपनों से दूर कर आदमियों की हिंसा भरी दुनिया में धकेल दें जहां उन्हें हर रास्ता ठोकर खाकर गिरकर ही ढूँढना पड़े।

यह दर्द तब और बढ़ जाता है जबकि हमें यह मालूम है कि छोटे-छोटे बच्चे किस तरह फैक्ट्रियों और ढाबों में काम करते हैं किन अमानवीय यातनाओं से गुजरते हैं। उनका जीवन नर्क में बदल जाता है। ऐसे में बच्चों पर घर चलाने का दबाव उन्हें वहां से भागने नहीं देता। वे वही काम करते रहते हैं पिसते रहते हैं और इसी में एक दिन खत्म हो जाते हैं। इस विषय पर लिखी कवि जसबीर त्यागी की कविता छोटू का हिसाब मुझे बरबस याद आ रही है जिसमें छोटे-छोटे बच्चों

पर होते अत्याचारों और उन अत्याचारों का बिना हिसाब-किताब दिए गुजर जाना किसी बड़ी मानवीय त्रासदी से कम नहीं।

इतिहास की किताबों में जो इतिहास है वहां आम आदमी का संघर्ष नहीं खास आदमी की महत्वाकांक्षा है और उसके लिए पिसते हुए लोग हैं। आम आदमी का दस्तावेज साहित्य में है उसके पूरे जीवन दुख सुख सपने और संघर्ष के साथ। अगर जीवन समझना है तो विक्टर ह्यूगो, बाल्जाक, वाल्ट व्हिटमैन, रिल्के, कबीर या प्रेमचंद के पास बैठना होगा। जिनके शब्दों में हांफता हुआ मनुष्य है जो संघर्ष से छोटी-छोटी उम्मीदें बचाता है और भविष्य के स्वप्न को गिरने नहीं देता। इब्बार रब्बी उसी आम जीवन के इतिहासकार हैं, उनके शब्द आम जीवन की बेचारगी और संघर्ष के शब्द हैं। उनकी कविताएं पढ़ते हुए कई बार शब्द इतने भारी लगने लगते हैं कि दिमाग थक जाता है, आंखें दुखने लगती हैं। 'मेरा घर' ऐसी ही कविता है जिसे पढ़ना जीवन की पल्लेदारी करना है। कदम डगमगाए तो बोझ रीढ़ तोड़ देगा। यह जीवन का महाकाव्य है ऐसा महाकाव्य जिसका अंत कोई कभी नहीं लिख पाएगा। कविता जिन पंक्तियों के साथ शुरू होती है वे कितना कुछ कहती हैं: "मां बहन को गालियां उगल रही है / घर में सुबह हो रही है।" यह एक ऐसी दुनिया है जहां सुबह का होना रोशनी का होना नहीं है बल्कि पुराने खटरागों का जागना है। यहां हर चीज जैसे बीमार है टूटी हुई या टूटने को बेकरार। इसी टूटने को बचाती हुई एक औरत थगाड़ी लगाकर जीवन के फटे को सिलना चाह रही है मगर सिया वह जाता है जिसमें जान होती है जो जर्जर होकर फट रहा हो उसे कोई कैसे सिए। यही संघर्ष है। मगर कवि की नज़र यहीं नहीं रुकती वह कुछ और भी देखती है जिसका इस दुर्दशा से गहरा रिश्ता है। एक तरफ एक कमरे में पूरी गृहस्ती है तो दूसरी ओर रायबहादुर अवध नंदन श्रीवास्तव की हवेली में कमरे खाली पड़े हैं। कोई रहने वाला नहीं। और किराएदार की जिसकी तनख्वाह 125 रुपए मासिक है 60 रुपए सिर्फ किराए में चले जाते हैं। तब घर कैसे चलेगा बच्चे कैसे पढ़ेंगे, हारी-बीमारी का क्या होगा। जब कोई समाधान नहीं मिलता तो लोग ईश्वर की तरफ भागते हैं उसी से गुहार करते हैं मगर उसके पास भी कोई समाधान नहीं। बेटा है डिग्री लिए मगर नौकरी नहीं है वह रुपए की जगह चिट्टियां भेजता है।

चिट्टियों पर उंगलियों के दाग,
चिट्टियों पर सीने की गर्मी,
चिट्टियों पर थूक के निशान,
चिट्टियों पर चूमने के बाद,
बार-बार पढ़ने से मिटे हुए अक्षर,
पढ़कर रोने से धुले हुए अक्षर,
"पहले मैं पढ़ूंगा"
"पहले मैं पढ़ूंगी"
की खींचतान में फटे हुए अक्षर।⁹

ऐसे जीवन में क्या सौंदर्य होगा जिसे कवि लिख सकता है, क्या यह गरीबी भाषा की सुंदरता से ढकी जा सकती है? नहीं,

कवि जानता है इसीलिए वह कोशिश नहीं करता। इब्बार रब्बी की चिंता कविता नहीं है कविता के बाहर जो दुनिया दर्द से बिलबिला रही है उसे ईमानदारी से दर्ज करना है ताकि वह दर्द अनकहा न रहे, अगर ठीक नहीं कर सके तो कविता दर्द की आवाज़ ज़रूर बने।

इब्बार रब्बी की भाषा कविता की बनावटी भाषा नहीं है, उसमें आम जीवन की सरलता है। वह विषय के साथ खुद को बदल लेती है। उनकी कविता है 'लदर-पदर'। जो लोग दिल्ली की डीटीसी बसों में चले हैं जिन्होंने बड़े-बड़े दफ्तरों में काम करते लोगों को देखा है जो न जाने कहां से आते हैं जिन्हें शाम की ट्रेनें पकड़नी होती हैं जो देर रात घर पहुंचते हैं, ऐसे लोगों के पास रुकने का समय नहीं होता, उनके लिए जिंदगी भागम भाग है, एकदम लदर-पदर। वे घर से भी भागते हैं और दफ्तर से भी। सारा जीवन बसों ट्रेनों के धक्कों में ही निकल जाता है।

भद-भद
भदर-भदर करते
लोग बैठ गए
कुर्सी और बेंचों पर
फाइलों में बूड़ गए
मशीन में खो गए
कट गए करोड़ करोड़
बच्चे
हंसियां-किलकारियां
लड़कपन
जवानियां
जीवन की निशानियां¹⁰

इब्बार रब्बी साहब ने बहुत से गीत लिखे हैं, ये गीत उस तरह के नहीं हैं जैसे गीतों की हमें आदत है, फिल्मी या लोकगीत। ये गीत कथाएं हैं, संघर्ष की कथाएं। इस तरह के गीत हिंदी में किसी और कवि के यहां मिलते हैं मुझे याद नहीं पड़ता। ये कई मायनों में अनूठे हैं, इन गीतों में अलग-अलग विषयों की पड़ताल कई कई बिंदुओं से की गई है। 'झुग्गी वालों का गीत' आम देशवासी की स्थिति का राजनीतिक मूल्यांकन है। आज़ादी की लड़ाई लड़ी गई, आम लोगों ने शहादत दी, जेल गए, हर जुल्म सहा लेकिन उन्हें क्या मिला। वे एक ऐसे भारत में धकेल दिए गए जहां अभावों के अलावा कुछ नहीं। बीमारी अशिक्षा अत्याचार से भरी इस दुनिया का समृद्ध भारत में प्रवेश निषेध कर दिया गया है। वे पूछते हैं

क्या फर्क है नए और पुराने में
हमें तो नहीं सौंपा उसने हमारा घर¹¹
वो आगे कहते हैं
हम पच्चीस साल से वहीं के वहीं खड़े हैं
अपने ही सीने में कांटे की तरह गड़े हैं
हम अधिक अन्न उपजाकर टाप रहे हैं
तुम उपवास के चमत्कार समझा रहे हो
हम उत्पादन बढ़ाकर हांफ रहे हैं
तुम तस्कर निर्यात चमका रहे हो।¹²

आज पत्रकारिता की जो हालत है उसके बारे में कुछ भी कहना कम है। यह क्षेत्र पूरी तरह पूंजी और सत्ता की दलाली का अड्डा बन गया है। पत्रकारिता के मूल्यों से किसी को कोई मतलब नहीं। पत्रकारिता का मुख्य काम अब जनता को बरगलाना है उसे सत्ता की लूट से बेखबर रखना है। इब्बार रब्बी क्योंकि पत्रकार थे वह इस गिरावट को बहुत पहले भांप गए थे। अपनी कविता 'खबरदारी का गीत' जो आज से पैंतालीस साल पहले लिखी गई थी ऐसा लगता है जैसे किसी ने आज ही लिखी है और आज की स्थिति को ध्यान में रखकर ही लिखी है। कविता कुछ इस तरह शुरू होती है

5. वही, पृ. 52-53
6. वही, पृ. 85
7. वही, पृ. 106
8. वही, पृ. 78-79
9. वही, पृ. 24
10. वही, पृ. 74-75
11. वही, पृ. 21
12. वही, पृ. 21
13. वही, पृ. 44S

पूंजी के लिए पुल नहीं हो सका
 मैं सफल पत्रकार नहीं हो सका
 विचारों में पत्ते सा डगमगाता रहा
 जड़ नहीं था इसलिए जड़ नहीं जमा सका
 पीछे ही पड़ा रहा उछलकर सामने नहीं आ सका
 जिस पर चलकर यह और वे मिलते
 ऐसा मधुर एकांत नहीं हो सका¹³

अभी हाल की ही खबर है, जिस तरह टाइम्स ऑफ इंडिया के पत्रकार को एक ट्वीट करने के लिए नौकरी से निकाला गया और दूसरी तरफ एक ऐसे पत्रकार को पुरस्कारों से नवाजा गया जिसका मुख्य काम झूठ और नफ़रत फैलाना है। वे कहते हैं खबरों के बीच बेखबर रहा/कितना अभागा था भ्रष्ट नहीं हो सका। भ्रष्ट होना आज भाग्यवान होना है जो ऐसा नहीं कर सकता वह अपनी सच्ची खबरों के संग एक दिन कबाड़ी के तराजू में रद्दियों में बिकेगा। कोई खरीदने वाला नहीं मिलेगा। आज भाव उसका है जो बिकने को तैयार है मगर सवाल यह है कि क्या बिकना ही जीवन है?

इब्बार रब्बी को सफलता का व्याकरण नहीं आता। उनकी कविता जिन आम लोगों की कहानी है उन्हीं की तरह वह भी आम है, संघर्ष से भरी, हांफती, अपने होने का अर्थ तलाशती हुई। आम होना किसी को आम बात लग सकती है मगर यह उतनी आम भी नहीं। इसके लिए त्याग करना पड़ता है खास बनने की चाहत को मरोड़ना पड़ता है हर तरह के संघर्ष और परिधि पर धकेले जाने को स्वीकार करना पड़ता है। आम बने रहने की ज़िद इब्बार रब्बी के जीवन में देखी जा सकती है। साहित्य की दुनिया में उनके व्यवहार में भी यह साफ़ दिखाई देती है। साहित्य के गठजोड़ो दाव पेंचों से दूर वे एक आम जिंदगी जीते रहे हैं। पुरस्कारों और दूसरे तरह के आयोजनों से दूर रहे हैं, इसके बावजूद उनकी कविताएं एक बड़े पाठक वर्ग को आकर्षित करती रही हैं। आगे आने वाली पीढ़ियों पर इस बात की जिम्मेदारी होगी की एक शानदार कविता वह किस तरह है मूल्यांकन करती है और उसे क्या स्थान देती है।

संदर्भ:

1. इब्बार रब्बी, कवि ने कहा, चुनी हुई कविताएं, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 6
2. वही, पृ. 14
3. वही, पृ. 94
4. वही, पृ. 50-51